इकाई ११ नेपाल में राजनीतिक प्राधार एवं प्रक्रियाएँ

इकाई की रूपरेखा

११.० उद्देश्य

११.१ प्रस्तावना

११.२ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

११.२.१ राणातंत्रा का उदय

११.२.२ राणातंत्रा का पतन

११.३ राणा-उपरांत राजनीति

११.३.१ शाही लोकतांत्रिाक संविधान, १९५९

११.३.२ पंचायत प्रणाली

११.३.३ नेपाल का वर्तमान संविधान

११.४ १९९० के संविधान की कार्यशैली

११.५ माओवादियों का सर उठाना

११.६ सारांश

११.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

११.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

११.० उद्देश्य

इस इकाई में हम नेपाल में राजनीतिक घटनाक्रम से अवगत होने का प्रयास करेंगे, खासकर उसके प्राधारों व प्रक्रियाओं के संदर्भ में। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- नेपाल में लोकतांत्रिाक राजनीति के क्रम-विकास का खाका खींच सकें;
- समसामयिक प्राधारों व प्रक्रियाओं का वर्णन कर सकें; और
- नेपाल में लोकतंत्रा को मज़बूत करने के रास्ते में मुख्य बाधाओं को पहचान सकें।

११.१ प्रस्तावना

अपने अधिकांश ज्ञात इतिहास में नेपाल एक परंपरागत एकाधिपत्य अथवा शासक परिवार के नियंत्राण में ही रहा है, बहुत हद तक विश्व के बाकी देशों से अलग-थलग। हम इसी कारण उसे एक राजतंत्रा या किंगडॅम कहते हैं। इस इकाई में हम सबसे पहले १७६९ में नेपाल के एकीकरण से आरम्भ उसके राजनीतिक इतिहास का वृत्तांत पढ़ेंगे, और फिर राणातंत्रा के उत्थान एवं पतन पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे। तदोपरांत, राजतंत्रा की पुनर्स्थापना, १९५९ में बहुदलीय राजनीति के साथ नेपाल का अल्पकालिक अनुभव, और पंचायत गठन की छीना-झपटी में राजतंत्रा की स्थापना पर चर्चा होगी। अन्ततः इकाई में चर्चा के विषय होंगे – राजतंत्रा के तहत राजनीतिक घटनाक्रम और नेपाल में पंचायत प्रणाली की पराजय और संसदीय लोकतांत्रिाक संस्थाओं की स्थापना कैसे उत्कर्ष पर पहुँची।

११.२ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस भूभाग का इतिहास, जिसमें नेपाल आता है, बहुत पुराना है और उसका आरम्भिक राजनीतिक इतिहास ७वीं शती ईसा-पूर्व में खोजा जा सकता है, जब पूर्व की ओर से किरातियों का आगमन हुआ। किरातियों के समय में ही सबसे पहले बौद्ध-धर्म इस घाटी में आया। २०० ईस्वी के अन्त में, इस देश में हिन्दू-धर्म लिच्छवियों के साथ आया, जिन्होंने उत्तर भारत से अनधिकार प्रवेश किया। नौवीं शताब्दी में लिच्छवी सत्ता का पतन अनेक जागीरों के उदय में परिणत हुआ। अठारहवीं सदी मध्य में गोरखा बादशाह पृथ्वीनारायण शाह ने विजय हासिल कर इन जागीरों को एकीकृत किया और नेपाल राज्य की स्थापना की। गोरखा राज्य के और आगे विस्तार पर, हालाँकि, १७९० के दशक में चीनी साम्राज्य द्वारा और १८१४-१६ में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा रोक लगा दी गई। नेपाल को उन सीमाओं में भींच दिया गया जो आज भी कायम है।

शाह शासकों ने एक निरंकुश राजनीतिक व्यवस्था कायम की जिसमें राजा ही सत्ता का केन्द्र होता था। राजा के शब्द और आज्ञाएँ ही उस देश के नियम-विनियम बन जाते थे और वे ही कानूनों का रूप ले लेते थे। इस प्रकार जन्मी राजनीतिक व्यवस्था के उच्च रूप से खण्डीकृत पिरामिडीय संरचना में राजा को अनेक प्रख्यात ब्राह्मण परिवारों द्वारा मंत्राणा प्रदान की जाती थी, जैसे चौतारिया, पाण्डेय व थापा परिवार, जो १७८५ व १८३७ के बीच द्रुत उत्तराधिकार में प्रमुख स्थिति पर काबिज़ होने आये थे। प्रशासन की कार्यवाही में विभिन्न परिवारों के बीच कोई अधिक अंतर नहीं था क्योंकि इन परिवारों का अभिभावी विचार अपनी-अपनी भौतिक व राजनीतिक समृद्धि को बढ़ाना ही था। प्रशासन व सेना में इसी के मुताबिक कर्मचारी/अधिकारीगण रखे जाते थे। किसी परिवार को सौंपी गई पलटनों की संख्या ही उसकी आपेक्षिक शक्ति और प्रभाव का सबसे विश्वसनीय प्रतीक हो गया।

११.२.१ राणातंत्र का उदय

पृथ्वीनारायण शाह की मृत्यु के बाद शासक परिवार के भीतर सत्ता के लिए हो रहे आन्तरिक संघर्ष ने राजा की स्थिति को कमज़ोर कर दिया। १८वीं शती के अन्तिम दशक में एक संक्षिप्त गड़बड़ विराम को छोड़कर, सिंहासन पर नाबालिग ही काबिज़ रहे। इससे राजपों (रीजेण्ट) मंत्रियों (मुख़्तियारों) को भरपूर मौक़ा मिला कि वे यथार्थ रूप में राजा को राजनीतिक प्रक्रिया से अलग रखते हुएसत्ता अपने ही हाथों में संकेन्द्रित रखें। शासक शाहों की परम्परा में अंतिम, राजा राजेन्द्र ने राजनीति के गुप्त प्रभाव का प्रयोग करते हुए स्वयं को अत्यधिक लिप्त रखा – एक राजनीतिक धड़े को दूसरे से भिड़ा कर। परिणामस्वरूप, देश एक गृह-युद्ध और संपूर्ण विघटन के कगार पर पहुँच गया। इस स्थिति को दोहन नेपाली इतिहास के एक उल्लेखनीय व्यक्ति द्वारा किया गया – जो जंग बहादुर कुँवर, जंग बहादुर राणा के नाम से ज़्यादा प्रसिद्ध थे। १८४६ में राजभवन शास्त्रागार (कोट) के प्रांगण में काठमांडू के सामरिक एवं प्रशासनिक प्रतिष्ठान के सदस्यों की एक सभा में सभी के लिए खुली एक जंग छिड़ी। जंग बहादुर ने जो अपने सैन्य-बल के साथ कोट में मौजूद था, इस संघर्ष को दबा दिया जिसमें उसके विरोधी व अन्य प्रमुख उच्चपदस्थ मारे गए। कोट नरसंहार के बाद जंग बहादुर प्रधानमंत्री बन गया। उसने अपने सभी खास प्रतिद्वंद्वियों को निकाल बाहर किया था फिर डर दिखाकर वश में किया, राजा को जेल में डाल दिया और सुरेन्द्र विक्रम शाह के रूप में राजेन्द्र के बेटे को राजगद्दी पर बिठा दिया।

जंग बहादुर ने १८५६ की शाही संसद (आदेश) द्वारा राजनीतिक तानेबाने में अपने परिवार की स्थिति को संस्थापित कर दिया। इस संसद ने जो अनिच्छुक परन्तु अभागे राजा से बलपूर्वक छीनी गई थी, जंग बहादुर व उसके उत्तराधिकारियों को नागरिक व सामरिक प्रशासन, न्याय व विदेश-संबंधों में असीम अधिकार प्रदान किए, जिनमें उस स्थिति में यदि वे अनुचित अथवा राष्ट्रीय हित के विरुद्ध पाये जायें तो राजा के आदेशों को ठुकराये जाने का भी अधिकार शामिल था । राजा ने तदोपरांत जंग बहादुर को 'राणा' की सम्मान-सूचक उपाधि भी प्रदान कर दी जो कि उत्तरवर्ती प्रधानमंत्रियों द्वारा प्रयोग की गई। बदले में, शाह राजाओं को और ऊँचे, कुछ-कुछ व्यंग्यात्मक, महाराजाधिराज

(राजाओं का राजा) की उपाधि से संबोधित किया गया। दूसरे शब्दों में, राजतंत्रा का स्वरूप बरकरार रखा गया, परन्तु राजा की शक्तियाँ राणा प्रधानमंत्राी द्वारा हड़प ली गईं। शाही परिवार तत्पश्चात् शाही महल की दीवारों में कैद होकर रह गया।

इस प्रकार शुरू हुई 'राणावाद' अथवा 'राणातंत्रा' की एक सदी लम्बी अवधि। राणा शासकों ने राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था की निरंकुश प्रकृति को कायम रखा जिसके भीतर रहकर राणा प्रधानमंत्राी सत्ता का स्रोत बन गया। पुराने आभिजात्य जो शाह शासन के दौरान राजनीतिक व प्रशासनिक पदों पर विराजमान थे, उन्हें हटाकर राणा परिवार के सदस्यों को बिठाया गया। राणा प्रधानमंत्राी की कुर्सी उत्तराधिकार में एक भाई से दूसरे को मिलने लगी।

राणा शासकों ने नेपाली कानून को मुलुकी आइन(नागरिक संहिता) के माध्यम से विधिबद्ध किया जिसने सिद्धांतत: कानून के समझ समानता का आश्वासन दिया। उन्होंने सती (१९२०) व दासता (१९२९) की प्रथा को भी समाप्त किया और अनेक उच्च-माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की। परन्तु कुल मिलाकर, राणा शासन-प्रणाली उत्पीड़नकारी थी। चूँकि उनकी सत्ता राजा द्वारा दायित्वों के अभित्याग व उसके यथार्थत: कारावास पर टिकी, आखिरकार अवैध थी, राणाओं ने बेरहमी से शासन किया और उस राजनीतिक चेतना को कुचल दिया जो उनकी सत्ता को चुनौती देती थी। लगभग पूरी जनता अशिक्षित और अपने गाँवों या, सबसे सटीक, अपनी घाटियों से बाहर की दुनिया के किसी भाग से बेखबर रही।

चूँकि अवाम को शासन में बोलने का कोई अधिकार नहीं था, राज्य की राजनीति सत्ता व पद के लिए राणा परिवार के प्रसिद्ध व्यक्तियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता और अन्योन्य क्रिया से अधिक कुछ नहीं थी। पारिवारिक वैमनस्य और षड़यंत्रा राजनीतिक प्रक्रिया की पहचान बन गये क्योंकि परिवार के महत्त्वाकांक्षी सदस्य उत्तराधिकार प्रणाली से असंतुष्ट थे। आरम्भ से ही हर एक राणा प्रधानमंत्राी ने अपने निकटतमों के हितों व अपने निजी राजनीतिक पद की सुरक्षा को दिमाग़ में रखते हुए, उत्तराधिकार की तालिका में बिना अधिकार के हेर-फेर किया। इसके बावजूद, राणातंत्रा राजा की कमज़ोरी और भारत में उस ब्रिटिश सत्ता के समर्थन की बदौलत कायम रहा जिसने भारत व इस हिमालयी राज्य में अपने हितों को बढ़ावा देने में राणाओं में एक भरोसेमंद आश्रित व्यक्ति और अपने रुख के प्रतिनिधि की झलक देखी।

११.२.२ राणातंत्र का पतन

२०वीं सदी के दूसरे चतुर्थांश में आरंभ होकर लोकतांत्रिाक विचारों ने नेपालवासियों के बीच जड़ें जमाना शुरू कर दिया। नेपाली सैनिक जिन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध में भाग लिया, नए विचारों के प्रभाव में आये। कुछ अभिजात व मध्य वर्ग, खासकर वे जो भारत में रह रहे थे और भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे थे, भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित हो गए। उन्होंने शीघ्र ही राज्य में लोकतंत्रा लाने के लिए स्वयं को संगठित किया। उन्होंने कुमाऊँ और बनारस में साप्ताहिक समाचार-पत्रा शुरू किए जो सार्वजनिक वाद-विवाद के ऐसे मंच बन गए जहाँ निर्वासित नेपाली जन राणा शासन के पिछड़ेपन और दमन की आलोचना कर सकते थे। १९३५ तक आते-आते नेपाली निर्वासितों के बीच सर्वप्रथम राजनीतिक पार्टी, प्रजा परिषद् (जनता की सभा) अस्तित्व में आ गयी। इसने बहुजातीय, लोकतांत्रिाक सरकार और राणातंत्रा को उखाड़ फेंकने की वकालत करना शुरू कर दिया। १९४६ में नेपाली कांग्रेस भारत की धरती पर जन्मी।

भारत से अंग्रेजों की वापसी ने राणा शासन को कमज़ोर कर दिया जो संकट काल में अंग्रेजों के समर्थन से पनपा था। इसने नेपालवासियों को उनके अपने देश की आज़ादी के लिए भी प्रोत्साहित किया। चीन में सत्ता के लिए साम्यवादियों के उदय ने भी शासक वर्ग को आतंकित कर दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्राी पद्म शंकर के नेतृत्व वाले शासक राणाओं के उदारवादी वर्ग ने एक संविधान देना स्वीकार कर नेपाली आन्दोलन को रोकने को प्रयास किया, परन्तु हठधर्मी तत्त्व इसको भी मानने को तैयार नहीं थे और प्रधानमंत्राी पर इस्तीफ़ा देने के लिए दबाव डाला। राणातंत्रा को बदल देने के सवाल पर जनता व शासकों के बीच मुकाबला इस प्रकार अपरिहार्य हो गया। इस मुकाबले में,

नेपाल में जारी लोकतांत्रिक आन्दोलन के नेताओं को उस राजा से समर्थन मिला, जिसको राणाओं द्वारा अप्रत्यक्ष बंदी की दशा में रखा जा रहा था और उन असंतुष्ट राणाओं (उनके निचले खानदान के आधार पर राणाओं की तीसरी श्रेणी के रूप में जाने जाने वाले) से भी, जिनको शासक पदों से संबंधित उनके हिस्से से महरूम रखा गया था व जिनमें से कुछ ने भारत में रहकर भारी दौलत कमाई थी। नेपाल में राणा-विरोधी लोकतांत्रिक लहर को स्वतंत्रा भारत की सरकार द्वारा सहानुभूतिपूर्वक देखा गया। राणाओं के पश्चिमोन्मुखी संबंधों व जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को समायोजित करने से उनके इन्कार का राष्ट्रवादी भारतीय नेतृत्व से कोई लेना-देना नहीं था।

भारत से शुरू हुए नेपाली जन-आन्दोलन ने १९५१ में राणा शासन-व्यवस्था को उखाड़ फेंका। उस समय नेपाली राजनीति के तीन खण्डों – राणा जन, जनप्रिय नेताओं व राजा – ने भारत के प्रधानमंत्री नेहरू के मार्गनिर्देशन में दिल्ली में एक शर्तनामा तैयार किया। राजा त्रिभुवन जो १९५० में देश से निकल भागे थे और भारत में शरण ली थी, को एक राणाओं के नियंत्राण से मुक्त राजा के रूप में गद्दी पर फिर से बैठाया गया। फरवरी १९५१ में पाँच राणाओं व पाँच नेपाली कांग्रेस पार्टी के सदस्यों को लेकर मोहन शंकर के नेतृत्व में एक गठबंधन मंत्रिामण्डल बनाया गया। एक लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई सरकार के गठित होने व पदभार संभालने तक इसको ही एक अंतरिम समझौता माना गया। संविधान की रचना करने हेतु एक संविधान-सभा बनाने व तदोपरांत दो वर्ष के भीतर आम चुनाव कराने हेतु सहमति बनी।

बोध प्रश्न १

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई के अंत में आदर्श उत्तर देखें।

१) राणातंत्रा (Ranacracy) क्या है?

.....

.....

.....

२) नेपाल में लोकतांत्रिक आन्दोलन की उत्पत्ति को स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

११.३ राणा-उपरांत राजनीति

असंगत घटकों की यह गठबंधन सरकार चंद महीनों से ज़्यादा नहीं चल सकी। उसी वर्ष नवम्बर में पुलिस की बर्बरता को लेकर नेपाली कांग्रेस मंत्रियों के पूरे गुट ने जब इस्तीफ़ा दे दिया तो राजा त्रिभुवन ने रूढ़िवादी राणा सत्ता गुट को निकाल बाहर कर एक नयी सरकार नियुक्त कर दी। परन्तु लोकतांत्रिक मानदण्डों व प्रथाओं में अपर्याप्त समाजीकरण और सत्ता हेतु लोभ के कारण ये राजनेतागण राजनीतिक स्थिरता नहीं ला सके। १९५१ और १९५९ के बीच, अंतरिम संविधान की शर्तों के तहत अथवा राजा के सीधे आदेश के तहत शासन करती अल्पकालिक सरकारों का ताँता लगा रहा। जैसे ही राजा किसी मंत्री को असहयोगी अथवा सदस्यों के बीच गहरे विवादों के कारण

कार्य करने में अक्षम पाता तो वह उसके स्थान पर ऐसे सदस्यों को नियुक्त कर देता जो अपेक्षाकृत छोटा राजनीतिक आधार रखते थे।

राजा त्रिभुवन की मृत्यु हो जाने पर उसका बेटा महेन्द्र वीर विक्रम शाह गद्दी पर बैठा। राजा महेन्द्र जो कि सिद्धांत में लोकतंत्रा के खुल्लमखुल्ला खिलाफ़ था, एक लोकतांत्रिाक दिखावे की आड़ में उसकी मर्ज़ी पूरी करने वाले मंत्रिापरिषदों अथवा मंत्राालयों के आदमियों को आजमाता हुआ, पहले ही की भाँति काम करता रहा। वह हालाँकि, फरवरी १९५९ में चुनाव कराने संबंधी वृहद-स्तरीय सविनय अवज्ञा अभियानों के दबाव में आ गया। चुनाव से एक सप्ताह पूर्व राजा ने एक संविधान का प्रारूप तैयार किया और उसे राष्ट्र को एक तोहफ़े के रूप में प्रस्तुत किया।

११.३.१ शाही लोकतांत्रिक संविधान, १९५९

इस शाही संविधान (Royal Constitution) का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि यह राजा द्वारा अनुमोदित था, न कि किसी संविधान-सभा द्वारा निर्मित, जैसा कि १९५१ के संविधान में उल्लेख किया गया था। शाही संविधान ने संवैधानिक राजतंत्रा के तहत एक संसदीय प्रणाली की परिकल्पना की थी। उसने द्विसदनी व्यवस्थापिका सभा, प्रधानमंत्राी पद एवं मंत्रिापरिषद् जैसी प्रतिनिधि संस्थाओं की व्यवस्था दी। परन्तु इसके साथ ही, उसने हर क्षेत्रा में राजा को असीम और अभिभावी अधिकार भी दे दिये। उदाहरण के लिए, राजा मंत्रिापरिषद् की कार्यवाही स्थगित कर सकता था और उसका कार्यभार खुद सँभाल सकता था यदि उसे निश्चय हो कि निम्न सदन में बहुमत रखने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त, राजा का सेना व विदेशी मामलों पर नियंत्राण था और वह संविधान के सभी या किसी भाग को स्थगित करने के लिए आपात्कालिक शक्तियों का आह्वान कर सकता था। इस प्रकार राजा राज्य का कार्यकारी प्रमुख भी था और औपचारिक प्रमुख भी।

नेपाल के इतिहास में पहली बार कराये गए राष्ट्रीय चुनावों में, १०९ सीटों में से ७४ लेकर नेपाली कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत हासिल किया। नेपली कांग्रेस के नेता बी. पी. कोइराला प्रधानमंत्राी बने। नई सरकार द्वारा आरम्भ के प्रस्तावित कुछ सुधारों ने, सेना के पारंपरिक सत्ता आधार, पूर्व अभिजात-तंत्रा व रूढ़िवादी भूमिधारक समूहों को गुप्त रूप से क्षति पहुँचाने की आशंका पैदा की। यहाँ तक कि राजा भी डरता था कि एक सार्वजनिक रूप से चुनी गई संसद का समर्थन प्राप्त कर कहीं यह लोकप्रिय प्रधानमंत्राी उसकी व्यक्तिगत सत्ता पर कठोर नियंत्राण न थोप दे और उसका दर्जा घटाकर उसे एक नाममात्रा का शासक बना दे। राजा ने सरकार को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। दिसम्बर १९६० में, देश की चिरकालीन हिंसा का हवाला देकर, जो कि व्यापक रूप से स्वयं राजा की कारिस्तानी मानी जाती है, राजा ने मंत्रिामण्डल को बर्खास्त करने और उसके नेताओं को गिरतार करने के लिए आपात्कालिक शक्तियों का सहारा लिया, यह आरोप लगाते हुए कि राष्ट्रीय नेतृत्व प्रदान करने तथा कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने में वे असफल रहे हैं। इस प्रकार, उदारवादी समाजवाद और लोकतंत्रा में प्रयोगों का, अप्रत्याशित अंत हो गया।

११.३.२ पंचायत प्रणाली

इस शाही राज्य-विप्लव के बाद शीघ्र ही राजा महेन्द्र ने देश को यह विश्वास दिलाने का एक अभियान शुरू किया कि संसदीय लोकतंत्रा नेपाल के लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उचित नहीं है। एक विकल्प के रूप में उसने एक योजना बनायी और शुरू की जिसे 'पंचायत लोकतंत्रा' कहा जाने लगा। यह राजनीतिक व्यवस्था दिसम्बर १९६२ में देश को सौंपे गए एक नए संविधान में रूपायित थी। पंचायत लोकतंत्रा का सबसे प्रभावशाली लक्षण यह था कि उसने एक दल-रहित व्यवस्था लागू की। पंचायत व्यवस्था एक त्रिा-पंक्ति प्रणाली पर गठित थी। निम्नतम स्तर पर थीं ग्राम व नगर पंचायतें। दूसरी पंक्ति में आती थीं ज़िला पंचायतें, प्रत्येक ७५ विकास ज़िलों के लिए एक। शीर्ष पर थी राष्ट्रीय पंचायत। सिर्फ़ प्राथमिक इकाइयाँ ही सार्वजनिक रूप से चुनी जाती थीं। अन्य सभी पंचायतें उनके अपने ही सदस्यों से निचले स्तर द्वारा सीधे चुनी जाती थीं और इस प्रकार, कम से कम, सिद्धान्ततः एक जनप्रिय आधार पर पिरामिडीय संरचना प्रदान करती थीं।

१९६२ में, पूरे नेपाल में स्थानीय चुनाव कराये गए और ग्राम व नगर पंचायतें चुनी गईं, और फिर क्षेत्रीय व राष्ट्रीय पंचायतों की स्थापना हुई। अप्रैल १९६३ तक यह पंचायत व्यवस्था पूरी तरह से हरकत में आ गयी।

यह पंचायत व्यवस्था तथाकथित रूप से राजनीतिक सत्ता व सरकारी प्रक्रिया दोनों का विकेन्द्रीकरण किये जाने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करती थी और प्राय: उसका पक्ष लोकतंत्रा के एक उच्चतर रूप में लिया जाता था। चूँकि दलीय पद्धति में राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध था, इस व्यवस्था को दल-रहित लोकतंत्रा (party-less democracy) नाम दिया गया, जो दलगत राजनीति की बुराइयों से दूर था।

पंचायत व्यवस्था ने असली विकेन्द्रीकरण लाने की बजाय राजभवन में सत्ता के और अधिक विकेन्द्रीकरण में मदद की। पंचायत संविधान इस बात पर ज़ोर देता था कि संप्रभुता देश के संवैधानिक कानूनों, प्रथाओं व रीति-रिवाजों की मार्फ़त राजा के हाथों में ही रहती है। राजा ही कार्यकारी, वैधानिक, व न्यायिक शक्ति होगा। संविधान ने उसकी कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में मदद के लिए एक मंत्रिामण्डल की व्यवस्था दी। परन्तु राजा ने राष्ट्रीय पंचायत के सदस्यों में से नियुक्त हुए मंत्रियों के कार्यकाल, विभाग आदि तय करने का कार्य अपने पास ही रखा। इसके अलावा, राष्ट्रीय पंचायत, जिसको विधायी अंग बनना था, महज़ एक सलाहकारी निकाय था जिसकी सिफ़ारिशें राजा की स्वीकृति के बाद ही कानून का रूप ले सकती थीं। राजा को अधिकार था कि वह राष्ट्रीय पंचायत की बैठक बुलाए, रद्द करे या बंद करे।

पंचायत व्यवस्था के अंतर्गत, असली सत्ता राजा के सचिवालय में संकेन्द्रित थी, और ग्रामीण क्षेत्रा में अधिकार मण्डल-आयुक्त कार्यालयों व उनके कर्मचारी/अधिकारीगण अथवा विकास अधिकारियों की समांतर व्यवस्था में निहित था। लोगों को या तो राजभवन-समर्थक होना पड़ता था या फिर राजभवन-विरुद्ध। सभी राजभवन-विरुद्ध गतिविधियों को राष्ट्र-विरुद्ध माना जाता था और ऐसी गतिविधियों में लोगों की भागीदारी सभी प्रकार के जुल्मों का विषय बनती थी, जिसमें देश-निकाला भी शामिल था।

यद्यपि राजनीतिक दलों पर औपचारिक रूप से प्रतिबंध था, फिर भी वे देश के भीतर और बाहर दोनों में लगातार सक्रिय रहे। जबकि राजा ने वाम दलों के कुछ धड़ों व नेताओं को अपना काम करने की अनुमति दे दी थी, अन्य राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व इस व्यवस्था की वास्तविक कार्यवाही में हर स्तर पर देखा जा सकता था। सबसे बुरी बात थी कि स्वयं ग़ैर-समर्थक पंचायत सदस्यगण पंचायती विचारधारा के साथ कड़ाई से जुड़कर एक दल के रूप में काम करते थे।

इस सबके बावजूद, राजा महेन्द्र ने निरंकुश सत्ता का प्रयोग कर राज्य-तंत्रा पर अपनी पकड़ मज़बूत रखते हुए सारे विपक्ष को दबा दिया और व्यवस्था को प्रभावपूर्ण रूप से चलाने के लिए इच्छानुकूल कर लिया। एक नये प्रकार के नेपाली राष्ट्रवाद की परिकल्पना कर और राज्यों के अन्तर्राष्ट्रीय समाज में देश की निजी पहचान बना कर हक कायम कर वह व्यापक जन-समर्थन को चतुराई से इच्छानुकूल करने में भी वह सफल रहे।

राजा वीरेन्द्र को १९७२ में अपने पिता की मृत्यु के बाद राज्य पर शासन करने के लिए इस व्यवस्था के साथ-साथ निरंकुश सत्ता भी विरासत में मिली। परन्तु वह इस व्यवस्था में बदलाव लाने के दबाव को नहीं रोक सके। १९७५ में उन्होंने इस व्यवस्था में अनेक परिवर्तनों की घोषणा की। राष्ट्रीय पंचायत की सदस्यता ९० से बढ़ाकर ११२ कर दी गयी और उसके १५ प्रतिशत सदस्यों को मनोनीत करने संबंधी राजा के अधिकार को बढ़ाकर २० प्रतिशत कर दिया गया। सबसे ज़्यादा अहितकर परिवर्तन था – राजाधिराज के सीधे नियंत्राण में ''गाँवों को वापसी राष्ट्रीय अभियान'' नामक एक इतर-संवैधानिक निकाय का उन्नयन। इस निकाय को ग्राम पंचायत स्तर पर राजनीतिक प्रक्रिया को नियंत्रित करने और कुछ-कुछ एक नीति-निर्मातृ समिति (पोलित ब्यूरो) की भाँति काम करने के लिए बहुत से अधिकार दे दिए गए।

चूँकि ये सभी परिवर्तन तत्त्वत: सौन्दर्यवर्धक थे और पंचायत व्यवस्था के सिद्धांतों का ढोंग करते थे, इसलिए इस व्यवस्था के खिलाफ़ विरोधात्मक गतिविधियाँ जारी रहीं। कानूनी रूप से हालाँकि प्रतिबंधित वाम दल व नेपाली कांग्रेस, देश के भीतर और बाहर दोनों जगह सक्रिय हो गए। विभिन्न मोर्चों पर विफल रहने तथा एक ओर प्रशासन के बढ़ते भ्रष्टाचार एवं अत्याचार तो दूसरी ओर मई-जून १९७९ में व्यवस्था के विरुद्ध हिंसक लहर की ओर प्रवृत्त करते विकासमान विपक्ष के कारण यह व्यवस्था चरमरा गयी। ऐसी परिस्थितियों में राजा ने एक जनमत-संग्रह की घोषणा की ताकि यह तय हो सके कि वर्तमान व्यवस्था को उपयुक्त सुधारों के साथ ज़ारी रखा जाये या फिर उस बहुदलीय व्यवस्था को लाने के लिए बढ़ा जाये जिसकी राजनीतिक रूप से सुस्पष्ट वर्ग माँग कर रहे थे। राजनीतिक दलों व राजनीतिक गतिविधियों पर से प्रतिबंध हटा दिया गया ताकि लोग स्वतंत्रा एवं भयमुक्त रूप से जनमत-संग्रह में भाग ले सकें।

दिसम्बर १९८० को हुए जनमत-संग्रह में ६७ प्रतिशत पात्रा मतदाताओं ने भाग लिया और वर्तमान व्यवस्था को जारी रखने के लिए ५४ प्रतिशत तक वोट दिया। ऐसा होने के अनेक कारक थे, जैसे लोकतंत्रा-समर्थक ताकतों की आत्म-तुष्टि, कुछ वामोन्मुखी राजनीतिक दलों द्वारा तोड़-फोड़, तथा कुछ आपराधिक कदाचारों का अपनाया जाना जिनमें पंचायत दलों द्वारा राज्य-तंत्रा का प्रयोग शामिल है। चूँकि जनमत-संग्रह ने यह भी भरपूर स्पष्ट किया कि अवाम का एक बड़ा तबका इसके खिलाफ़ था, राजा को पंचायत-व्यवस्था के बुनियादी मानदण्डों व मूल्यों से जुड़े रहकर उक्त व्यवस्था को उदार बनाना पड़ा। पंचायत संविधान में संशोधन किया गया ताकि सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रचलित किया जा सके। राष्ट्रीय पंचायत के तीन-चौथाई सदस्य जो बढ़ाकर अब १४० कर दिए गए थे, को सीधे चुने जाना था। प्रधानमंत्री को राष्ट्रीय पंचायत की सिफ़ारिशों पर नियुक्त किया जाना था और मंत्रिामण्डल के अन्य सदस्यों को प्रधानमंत्री की सलाह से। मंत्रिामण्डल को राष्ट्रीय पंचायत के प्रति जवाबदेह होना था। इस प्रकार, यह राजनीतिक व्यवस्था संसदीय पद्धति पर ढाली गई।

यद्यपि सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता राजा में ही निहित रही, नब्बे के दशक में राज्य में राजनीति और अधिक बेरोकटोक हो गयी। परन्तु पंचायत व्यवस्था, स्थानीय संरक्षण का एक प्रमुख स्रोत, गुटबाज़ी के झगड़ों और गड्डमड्ड गठबंधनों का मंच बन गयी। मई १९८१ के चुनावों के बाद सूर्य बहादुर थापा द्वारा बनाई गई सरकार एक गंभीर खाद्य संकट और भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण १९८३ में गिर गई। लोकेन्द्र बहादुर चंद के नेतृत्व वाली पंचायत में एक प्रतिद्वंद्वी गुट ने सरकार बनायी। १९८६ में दूसरे चुनावों के बाद मारीच मान सिंह श्रेष्ठ प्रधानमंत्री बने।

यह बहरहाल ग़ौरतलब है कि नेपाल में लोकतांत्रिाक शक्तियों ने पंचायत संविधान में संशोधनों को स्वीकार नहीं किया। वे एक बहुदलीय लोकतांत्रिाक व्यवस्था से कम पर राज़ी ही नहीं थे। यह भरोसा हो जाने पर कि संवैधानिक सुधारों के माध्यम से नेपाल में ऐसी कोई व्यवस्था लागू नहीं की जा सकती, १९८१ व १९८६ के चुनावों का नेपाली कांग्रेस व अन्य राजनीतिक दलों ने बहिष्कार किया और पंचायत व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए अपना संघर्ष शुरू करने का निश्चय किया।

पंचायत व्यवस्था को अंतिम झटका नेपाली कांग्रेस व साम्यवादी दलों द्वारा एक साथ शुरू किए गए एक लोकतंत्रा-समर्थक आन्दोलन के रूप में लगा। उन्होंने राजनीतिक दलों पर से प्रतिबंध उठा लेने और मौलिक अधिकारों को बहाल करने के लिए सरकार से माँग करते हुए सत्याग्रह का आयोजन किया। सहमति में काम करते हुए राजनीतिक दलों के साथ लोकतंत्रा-समर्थक आंदोलन ने शहरी जनता के जबर्दस्त बहुमत की निष्ठा और अनुमान को वश में करते हुए, ज़ोर पकड़ लिया। इसी बीच, कृषि उत्पादन में गिरावट के कारण बढ़ते आर्थिक संकट और मार्च १९८९ में नेपाल सीमा के साथ लगे दो प्रवेश-द्वारों को छोड़कर शेष को बंद करने संबंधी भारत सरकार के निर्णय ने (दोनों देशों के बीच व्यापार एवं परिवहन संधियों की अवधि समाप्त होने के कारण) पंचायत शासन-प्रणाली के संकट को और गहरा दिया। अप्रैल १९९० में दसियों हज़ार नेपालियों ने राजा वीरेन्द्र, जिन्हें परंपरागत रूप से भगवान् का अवतार मानकर आदर दिया जाता था, के खिलाफ़ प्रदर्शन करते हुए काठमाण्डू में शाही निवास पर मार्च किया। पुलिस और पलटनों ने अनेक मार्चकर्त्ताओं को गोलियों से भून डाला। नेपाल में शोक की लहर दौड़ते ही, राजा ने तत्काल पंचायत

व्यवस्था को समाप्त कर दिया, राजनीतिक दलों पर से प्रतिबंध उठा लिया और नेपाली कांग्रेस के एक नेता, कृष्णा प्रसाद भट्टरई, के प्रधानमंत्रित्व में अनुभवी विपक्षी नेताओं को विभिन्न पद सौंप कर एक अन्तरिम सरकार गठित कर दी। इस अन्तरिम सरकार का पहला काम था मंत्रिामण्डल द्वारा नियुक्त एक स्वतंत्रा संवैधानिक आयोग द्वारा प्रारूपित एक नये संविधान के तहत एक निर्धारित अवधि के भीतर स्वतंत्रा और निष्पक्ष चुनाव कराना। एक स्वतंत्रा 'संविधान अनुशंसा आयोग' द्वारा एक नये संविधान का मसविदा तैयार किया गया जिस पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई और अंतरिम मंत्रिापरिषद् द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। इसका अनुसरण करते हुए राजा वीरेन्द्र ने ९ नवम्बर १९९० को नया संविधान जारी कर दिया और १९६२ के संविधान को रद्द कर दिया।

११.३.३ नेपाल का वर्तमान संविधान

नेपाल का संविधान, १९९० जिसे देश का बुनियादी कानून घोषित किया गया है, देश का इस रूप में वर्णन करता है – ''बहुजातीय, बहुभाषायी, लोकतांत्रिाक, स्वतंत्रा, अविभाज्य, संप्रभु, हिन्दू और संवैधानिक राजतंत्राीय राज्य।'' यह नेपाली जनता में ही नेपाल की संप्रभुता विहित करता है।

इसने नेपाली नागरिकों को वे सभी मौलिक अधिकार प्रदान किए जो दूसरे किसी भी लोकतंत्रा में नागरिकों को मुहैया थे। नेपाल को एक हिन्दू राज्य के रूप में शब्दबद्ध किया गया है, लोगों को धार्मिक स्वतंत्राता प्रदान की गई है। यह अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करता है। इसी प्रकार, यद्यपि, नेपाली को राष्ट्र-भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है, लोगों की अन्य सभी भाषाओं को संविधान में मान्यता मिली है।

संविधान कहता है कि राजा ही नेपाली राष्ट्र और नेपाली अवाम की एकता का प्रतीक है। संविधान ने सिंहासन के उत्तराधिकार क्रम से संबंधित परंपरा को कायम रखा है। राजा को विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं तथा कर से छूट भी।

यह संविधान राजा को कार्यकारी शक्तियाँ प्रदान करता है, परन्तु इनका प्रयोग प्रधानमंत्राी के नेतृत्व वाले एक मंत्रिामंडल की सहायता और सलाह के साथ ही किया जाएगा। इस प्रकार, राजा एक नाममात्रा का कार्यकारी प्रमुख है। मंत्रिामण्डल, यथा वास्तविक कार्यकारिणी, त्याग व समर्पण संबंधी अपने कृत्यों के लिए प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) के प्रति जवाबदेह है।

राजा को आपात्कालिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। बाहरी आक्रमण अथवा आंतरिक सशस्त्रा विद्रोह अथवा अत्यधिक आर्थिक मंदी से पैदा आपात् स्थिति की दशा में राजा आपात्काल की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार के आदेश को, बहरहाल, तीन महीनों के भीतर प्रतिनिधि सभा की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी और यदि स्वीकृति मिल जाती है तो वह आदेश छह महीने की अवधि तक प्रभावी रहेगा।

संविधान एक द्विसदनी विधायिका निदर्शित करता है। २५० सदस्यों वाली प्रतिनिधि सभा पाँच वर्ष की अवधि के लिए लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनी जाती है। उच्च सदन, यथा राष्ट्रीय परिषद्, ६० सदस्यों वाला एक स्थायी सदन है। इनमें से ३५ सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर प्रतिनिधि सभा द्वारा चुने जाते हैं, १५ पाँच विकास क्षेत्राों द्वारा चुने जाते हैं और १० राजा द्वारा नामज़द किए जाते हैं। भारत में लोकसभा की भाँति प्रतिनिधि सभा के पास भी विधायी कार्यों का पालन करने के लिए अधिक अधिकार हैं।

न्यायिक प्रणाली में होंगे – एक उच्चतम न्यायालय, अपील संबंधी न्यायालय और ज़िला अदालतें। इसके अलावा, विशेष मामलों की सुनवाई के उद्देश्य से अदालतें अथवा कचहरियाँ स्थापित की जा सकती हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति व सेवा-शर्तों के संबंध में प्रावधान रखे गए हैं ताकि एक स्वतंत्रा और निष्पक्ष वातावरण में न्यायिक कार्य सुनिश्चित हो सकें।

शाही शासन-प्रणाली के दौरान नौकरशाही न तो स्वतंत्रा थी, न ही कार्यवाही में निष्पक्ष और दक्ष। प्रशासनिक कर्मियों की जीवन-यात्राा राजभवन के संरक्षण पर निर्भर थी। संविधान ने भर्ती, प्रशिक्षण,

प्रोन्नति व प्रशासनिक कर्मियों के अन्य पहलुओं को देखने के लिए एक स्वतंत्रा लोक सेवा आयोग की व्यवस्था देकर एक पक्की प्रशासनिक व्यवस्था की नींव रखने का प्रयास किया।

बोध प्रश्न २

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई के अंत में आदर्श उत्तर देखें।

१) राजा महेन्द्र द्वारा आरम्भ सरकार की पंचायत व्यवस्था के मुख्य अभिलक्षणों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

२) अपने शासन के प्रथम दशक के दौरान राजा वीरेन्द्र द्वारा नेपाली राजतंत्रा में लाये गए परिवर्तन कौन से थे?

.....

.....

.....

.....

.....

११.४ १९९० के संविधान की कार्यशैली

१९९० में प्रथम लोकतांत्रिाक संविधान जारी किए जाने की घोषणा से ही, नेपाल में किसी व्यवहार्य लोकतांत्रिाक व्यवस्था की स्थापना एक अत्यधिक मुश्किल काम रहा है। मई १९९१ में कराए गए पहले आम चुनावों में नेपाली कांग्रेस (एन.सी.) और नेपाली संयुक्त मार्क्सवादी लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी (यू.एम.एल.) के बीच ही अधिकांश वोटों का बँटवारा रहा। नेपाली कांग्रेस के नेता गिरिजाप्रसाद कोइराला प्रधानमंत्राी बने। परन्तु गुटबाज़ी शीघ्र ही एन.सी. को निगल गई जिसमें कोइराला, गणेश मानसिंह, पार्टी के सर्वोच्च नेता तथा के.पी. भट्टरई, पार्टी अध्यक्ष ने अपने समर्थकों के बीच सत्ता वितरण का प्रयास किया। सरकार की नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करने में दिक्क़त को देखते हुए जी.पी. कोइराला ने इस्तीफ़ा दे दिया और १९९४ में मध्यावधि चुनावों की माँग की।

११ नवम्बर १९९४ में हुए मध्यावधि आम चुनावों में पार्टी को कोई स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। यू. एम.एल. ने ८९ सीटें हासिल कीं जबकि नेपाली कांग्रेस को ८३ सीटें मिलीं। महत्त्वपूर्ण रूप से, पूर्व पंचायत युग के राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई गई राष्ट्रीय लोकतांत्रिाक पार्टी (एन.डी.पी.) ने २० सीटें जीतीं। यू.एम.एल. के मनमोहन अधिकारी ने नेपाल मज़दूर किसान पार्टी और नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (मासल) जैसे छोटे-छोटे दलों के समर्थन से एक अल्पमत सरकार बना ली। इस प्रकार, नेपाल पहला साम्यवादी राजतंत्रा बन गया। परन्तु सरकार कुछ ही महीनों में गिर गई। तदोपरांत, सभी प्रमुख दलों में उभरते भेदों के चलते, १९९९ में अगले आम चुनाव कराये जाने से पूर्व एक-एक करके चार गठबंधन सरकारें सत्ता में आयीं। इस बार, नेपाली कांग्रेस ने ११३ सीटें लेकर स्पष्ट बहुमत हासिल

किया। कृष्णा प्रसाद भट्टरई प्रधानमंत्री बने। परन्तु पार्टी के भीतर गुटबाज़ी के कारण, उनके स्थान पर २००० के आरम्भ में ही गिरिजा प्रसाद कोइराला को नियुक्त किया गया और तदोपरांत जुलाई २००१ में पार्टी की अगली पीढ़ी के नेता शेर बहादुर देउबा को।

इस वक़्त तक, १९९६ में शुरू हुए माओवादी 'पीपल्'स वॉर' ने गंभीर रूप लिया। माओवादियों ने ग्रामीण इलाक़ों में अपना प्रभाव फैलाने के लिए आतंक का रास्ता अपनाया और पाँच ज़िलों में प्रशासन का प्रभावी नियंत्राण अपने हाथ में ले लिया। माओवादी आन्दोलन के आरम्भिक वर्षों में, वामपंथी खेमे से जुड़े नेपाली राजनीतिज्ञों ने माओवादियों की ओर कोई भी कड़ा कदम उठाये जाने के प्रति एक बिरादराना विरोध दिखाया। नेपाल में तीसरी बड़ी पार्टी नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी–मा. ले., ने उसकी कार्य-शैली को अस्वीकार करते हुए भी नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के लक्ष्यों का समर्थन किया। आंतरिक समस्याओं से घिरी बहुमत वाली सत्तारूढ़ पार्टी, नेपाली कांग्रेस, माओवादी समस्या से निबटने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठा सकी।

माओवादी राजद्रोह ने नेपाल की लोकतांत्रिाक राजनीति में गड़बड़ फैला दी जो कि गुटबाज़ी में पड़कर पहले ही डगमगा रही थी और जिसने अन्ततोगत्वा एक संवैधानिक संकट की ओर प्रवृत्त किया। मई २००२ में देउबा सरकार ने संसद भंग किए जाने की सिफ़ारिश की परंतु माओवादी बग़ावत के कारण चुनाव कराने में मुश्किल अनुभव की। राजा ज्ञानेन्द्र ने अक्तूबर २००२ में यह अवसर छीन लिया और ''अक्षमता'' का आरोप लगाकर प्रधानमंत्री व उसके मंत्रिामंडल को बर्खास्त किए जाने के लिए संविधान के अनुच्छेद १२७ की अभ्यर्थना की। राजा ने एक आदेश के साथ एक नौ-सदस्यी अंतरिम सरकार के नेतृत्व के लिए राजभक्त राष्ट्रीय प्रजातंत्रा पार्टी (आर.पी.पी.) के नेता लोकेंद्र बहादुरचंद को नामांकित किया ताकि कानून व व्यवस्था बहाल हो, मध्यावधि चुनाव एवं उन स्थानीय निकायों के चुनाव कराये जा सकें जो जुलाई में भंग हो गए थे, माओवादी विद्रोह की समस्या हल हो, विकास कार्य क्रियान्वित हों तथा अर्थव्यवस्था और अधिक गिरने से रुके।

प्रमुख राजनीतिक दल जो राजा की कार्रवाई के आलोचक थे, अंतरिम सरकार में शामिल नहीं हुए। मार्च २००३ में, नेपाल में मुख्यधारा शक्तियों ने एक गठबंधन बनाया और एक १८-सूत्री न्यूनतम साझा कार्यक्रम को अंतिम रूप देकर राजतंत्राीय नियंत्राण के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। तब से ही एक त्रिाखण्ड-विभाजित सत्ता संघर्ष नेपाली राजनीति पर छाया हुआ है, यथा राजा, मुख्यधारा राजनीतिक दलों और माओवादियों के बीच। शाही नेपाल सेना समर्थित राजतंत्रा इस राष्ट्रीय राज्यतंत्रा में वह भूमिका फिर से पाने का प्रयास कर रहा है जो १९९० के संविधान के प्रभाव में आने व उसकी शक्ति सीमांकित किए जाने से पूर्व उसके पास थी। मुख्यधारा राजनीतिक दल भंग संसद के फिर से चालू किए जाने अथवा एक सर्व-दलीय सरकार गठित किए जाने के माध्यम से संवैधानिक सरकार में वापसी की माँग कर रहे हैं। माओवादी जन एक सशक्त संशोधित संविधान का प्रारूप तैयार किए जाने के लिए एक संविधान-सभा गठित किए जाने के लिए अपनी माँग को लेकर अड़े हुए हैं।

११.५ माओवादियों का सर उठाना

जैसा कि हमने देखा, नेपाल में लोकतांत्रिाक राजनीति चूँकि अत्यधिक गुटबाज़ी का शिकार थी, वहाँ उत्तरोत्तर सरकारों ने सरकारी नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करने में दिक्क़त महसूस की। इसका एक परिणाम यह हुआ कि आर्थिक विकास दर कम ही रही और यह जनसंख्या वृद्धि दर से मेल नहीं खाती थी। अगली इकाई में हम नेपाल की अर्थव्यवस्था और समाज के बारे में और अधिक पढ़ेंगे। यहाँ, यह ध्यान देना पर्याप्त होगा कि एक ऐसा समाज जिसमें एक जातीय और धार्मिक रूप से विखण्डित जनता रहती थी, व्यापक बेरोज़गारी और निरक्षरता ने नेपाल में माओवादी आन्दोलन को सर उठाने व फलने-फूलने का आधार प्रदान कर दिया।

माओवादी कभी बाबूराम भट्टरई के नेतृत्व वाले संयुक्त जन-मोर्चा (यू.पी.एफ.एन.) के झण्डे तले मुख्यधारा राजनीति का हिस्सा थे। पार्टी में फूट पड़ने के बाद बाबूराम धड़ा १९९४ में मध्यावधि

चुनावों में भाग लेने के लिए चुनाव आयोग की मान्यता प्राप्त करने में विफल रहा। इस गुट ने नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) से हाथ मिला लिया। माओवादियों का घोषित लक्ष्य था – जन-संघर्ष के माध्यम से एक 'लोगों की सरकार' कायम करना, जो कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद से प्रेरित हो। १९९६ में उन्होंने नेपाल के विभिन्न भागों में हमले करवाकर जन-आन्दोलन (पीपल्'स मूवमॅण्ट) शुरू कर दिया।

राज्यों को एक अर्ध-सामंती संगठन बतलाते हुए माओवादियों ने उसे ही देश के भीतर विद्यमान सामाजिक-आर्थिक बुराइयों के लिए जिम्मेदार ठहराया। साथ ही, उन्होंने भारत और अमेरिका को ऐसी साम्राज्यवादी शक्तियों के रूप में उभारकर पेश किया जो नेपाल के भीतर दक्षिणपंथी ताकतों के साथ मिलकर नेपाली जनता के हितों को नुकसान पहुँचा रही है। उनकी अन्य माँगों में शामिल हैं : १९५० में भारत के साथ किए गए शांति एवं मित्राता संधि पर हस्ताक्षर का लोप, खुली सीमा का नियंत्राण एवं नियमन किया जाना, भारतीय सशस्त्रा बलों में गोरखाओं की भर्ती बंद किया जाना और हिन्दी फिल्मों व पत्रा-पत्रिाकाओं के माध्यम से सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से बचाव किया जाना।

२००० ईस्वी की समाप्ति तक माओवादी नेपाल के ७५ ज़िलों में से दो-तिहाई से भी अधिक में सक्रिय थे, भले ही उनका प्रभाव ग़रीबी की मार झेल रहे आर्थिक रूप से पिछड़े इलाकों में अधिक है। उन्होंने पश्चिमी नेपाल के पाँच ज़िलों में 'लोगों की सरकार' कायम की थी। अपने नियंत्राण वाले इलाकों में माओवादी स्थानीय शांति-रक्षण करते हैं, स्थानीय विवाद निपटाते हैं, लोगों से कर बटोरते हैं और यहाँ तक कि बैंक भी चलाते हैं।

नेपाल सरकार ने माओवादी समस्या से निबटने के लिए बल प्रयोग भी किया है और उन्हें मनाने-फुसलाने व उनसे सौदेबाज़ी का प्रयास भी। मार्च २००१ से लेकर अब तक सरकार और माओवादियों के बीच शांति-समझौतों के अनेक दौर हो चुके हैं। परन्तु असंगत भिन्नताओं व परस्पर संदेह के कारण ये प्रयास निष्फल रहे हैं। विद्रोहियों द्वारा आतंक व हिंसा का दौर जारी है और सुरक्षा-बलों ने विद्रोह के खिलाफ कार्रवाई में इजाफ़ा किया है। आधिकारिक सूत्रों से प्राप्त जानकारी के अनुसार २००४ के आरम्भ तक, आठ साल पुराने माओवादी विद्रोह के खिलाफ़ लड़ाई में दोनों ओर की लगभग ८००० जानें गई हैं, जिनमें २८०० सुरक्षा-बल के कर्मचारी/अधिकारीगण हैं।

बोध प्रश्न ३

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के लिए इकाई के अंत में आदर्श उत्तर देखें।

१) नब्बे के दशक के दौरान नेपाल में राजनीतिक स्थिरता के अभाव के क्या कारण थे?

.....

.....

.....

.....

.....

२) राजा ज्ञानेन्द्र ने देउबा सरकार को क्यों बर्खास्त कर दिया?

.....

.....

.....

११.६ सारांश

नेपाल, जैसा कि हम उसे आज जानते हैं, १७६९ में अस्तित्व में आया, जब गोरखाओं के राजा पृथ्वीनारायण शाह ने विजय हासिल कर विभिन्न रियायतों को एकीकृत किया और नेपाल राज्य की स्थापना की। परन्तु शाह राजवंश शीघ्र ही राणा प्रधानमंत्रियों के हाथों की कठपुतली बन गया। यह स्थिति १९५० तक चली जब तक कि लोगों की बढ़ती लोकतांत्रिक आकांक्षाओं एवं उनके आंतरिक विवादों के परिणामस्वरूप राणा शासनतंत्रा का अंत नहीं हो गया। राजतंत्रा फिर से कायम हुआ और १९५० के दशक में ही संसदीय लोकतांत्रिक संस्थाएँ स्थापित करने के अनेक प्रयास हुए।

इन प्रयासों की विफलता राजा महेन्द्र द्वारा शुरू की गई पंचायत व्यवस्था की शक्ल में राजतंत्रा की बहाली में प्रकट हुई। परन्तु लोकतांत्रिक सुधारों के लिए चल रही माँगों ने राजा को पंचायत व्यवस्था में सुधार और तदोपरांत १९९१ में एक संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था लागू करने को मज़बूर किया, तथापि, नेपाल में लोकतांत्रिक राजनीति की सरकार प्राय: ही परिवर्तनों के साथ अत्यधिक रूप से गुटबंदी का शिकार रही। इसने सिर्फ़ राजतंत्रा के राजनीतिक प्रभाव में ही बढ़ोत्तरी की।

१९९६ से ही नेपाल पर माओवादी आन्दोलन हावी रहा है। माओवादी विद्रोहियों ने सांवैधानिक राजतंत्रा के विरुद्ध एक अभियान छेड़ा हुआ है।

११.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, एच. एन., १९८०, *नेपाल : ए स्टडी इन कॉन्स्टीट्यूशनल चेन्ज,* नई दिल्ली

गुप्ता, अनिरुद्ध, १९६४, *पॉलिटिक्स इन नेपाल : ए स्टडी ऑफ़ पोस्ट-राणा पॉलिटिकॅल डिवैलॅपमण्ट एण्ड पार्टी पॉलिटिक्स,* एलाइड, बम्बई

शाह, ऋषिकेश, १९९०, *पॉलिटिक्स इन नेपाल,* नई दिल्ली

हन्ट, माइकल (सं.), १९९४, *नेपाल इन द नाइन्टीज़ : वर्ज़न्स ऑफ़ द पास्ट, विज़न्स ऑफ़ द फ़्यूचर,* ओ. यू.पी., दिल्ली

११.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न १

१) राणावाद अथवा राणातंत्रा का अर्थ है वह राजनीतिक शासन-प्रणाली जिसमें राणा प्रधानमंत्री ही वास्तविक शासक हुआ करते थे। जबकि राजतंत्रा सिर्फ़ औपचारिक होता था और राजा की सभी शक्तियाँ प्रधानमंत्रियों द्वारा हड़प ली जाती थीं।

२) नेपाल में लोकतांत्रिक आन्दोलन की उत्पत्ति २०वीं सदी के आरंभिक दशकों में तलाशी जा सकती है। नेपाली सैनिक, जिन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध में भाग लिया था, और कुछ भारत में रह रहे नेपाली अभिजात व मध्य वर्गों के हिस्से सबसे पहले नए विचारों से प्रभावित हुए। भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास ने भी अनेक नेपालियों को वहाँ लोकतंत्रा के लिए संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

बोध प्रश्न २

१) पंचायती लोकतंत्रा की गिरफ़्त में राजतंत्रीय निरंकुश शासन – क्षेत्रीय पंचायतों के माध्यम से विकेन्द्रीकरण के नाम पर राजभवन में सत्ता का संकेन्द्रण – राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध।

२) राजा वीरेन्द्र को जन दबाव के कारण अनेक लोकतांत्रिक परिवर्तनों का समावेश करना पड़ा। पंचायत व्यवस्था में सुधार किया गया ताकि उसमें अंतर्निहित कुछ कमज़ोरियों को दूर किया जा सके। उसके बाद राष्ट्रीय पंचायत के सदस्य वयस्क मताधिकार के माध्यम से सीधे चुने जाने लगे। प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल को राष्ट्रीय पंचायत के प्रति जवाबदेह बनाया गया।

बोध प्रश्न ३

१) राजनीतिक दल नेपाल के राजनीतिक परिदृश्य में नए-नए शामिल हुए हैं। जब राणातंत्रा का अंत हो गया तो उनके नेतागण लोकतांत्रिक मानदण्डों व प्रथाओं में पर्याप्त रूप से समाजीकृत नहीं थे। दल-रहित पंचायत व्यवस्था के प्रवेश ने दलीय व्यवस्था को और कमज़ोर किया। दलीय व्यवस्था में प्रभुत्व जमाने के लिए सिद्धांतों की बजाय व्यक्तिगत पहचानों के आगमन से ये सभी गुटबंदी के शिकार हो गए जिसके परिणामस्वरूप सरकारें जल्दी-जल्दी बदलीं और राजनीतिक अस्थिरता आयी। इस अस्थिरता ने राजतंत्रा को मज़बूत करने में सीधे योगदान किया।

२) राजा ज्ञानेन्द्र द्वारा देउबा सरकार बर्खास्त कर दी गई क्योंकि संसद को भंग किए जाने संबंधी सिफ़ारिश किए जाने के बावज़ूद, सरकार माओवादी विद्रोह की वजह से छह महीने की निर्धारित अवधि में चुनाव नहीं करा सकी।